

सम्पादकीय

तत्त्वार्थमणिप्रदीप

(आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र की टीका)

(गतांक से आगे)

आगे और भी कहते हैं कि - निश्चयनय एकत्व को प्राप्त कराके ज्ञानरूपी चैतन्य में स्थापित करता है, परमानन्द को उत्पन्न कर वीतराग बनाता है। इतना काम करके वह स्वतः निवृत्त हो जाता है। इसप्रकार वह जीव को नयपक्ष से अतीत कर देता है। इस कारण वह पूज्यतम है।”

सबकुछ मिलाकर तथ्य यह है कि आचार्य अकलंकदेव राजवार्तिक में प्रमाणनयैरधिगमः सूत्र में प्रमाण पद को पहले रखने का कारण बताते हुए विषय की विशालता के आधार पर प्रमाण को पूज्य बता रहे हैं और श्रुतभवनदीपक नयचक्र में नयपक्षातीत, विकल्पातीत आत्मानुभूति में पहुँचानेवाले निश्चयनय को पूज्यतम बताया गया है।

नयचक्र में शंकाकार की ओर से व्यवहारनय के पूज्यतम होने के पक्ष में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि यदि विषय की विशालता ही पूज्यतम होने का आधार है तो फिर व्यवहारनय, निश्चयनय और उभयनय अर्थात् व्यवहार-निश्चयनय सभी कुछ समाहित हैं जिसमें, ऐसा वह प्रमाण लक्षणवाला व्यवहारनय पूज्यतम क्यों नहीं है ?

इसके उत्तर में कहा गया है कि वह प्रमाणलक्षणवाला व्यवहारनय आत्मा को नयपक्षातीत नहीं कर सकता; इसलिए वह पूज्यतम नहीं है।

नयचक्र में पूज्यतम होने का आधार विषय की विशालता नहीं है; अपितु नयपक्षातीत कराके आत्मानुभूति कराने में है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि दोनों ही कथन अपनी-अपनी अपेक्षा से प्रकरणानुसार उचित ही हैं।

प्रमाण-नय-निक्षेपों के संदर्भ में प्रत्येक के बारे में अनेक विशाल ग्रंथ लिखे गये हैं। मैंने स्वयं नयों के बारे में परमभावप्रकाशक नयचक्र नामक ग्रंथ लिखा है।

प्रमाण और नयों के प्रकारों की चर्चा आगे के सूत्रों में यथास्थान आवेगी; अतः प्रमाण और नयों के बारे में यहाँ अधिक कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है।॥६॥

निर्देशादि का कथन

प्रमाण और नयों के द्वारा सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय और जीवादि पदार्थों को जाना जाता है और नामादि निक्षेपों से उनका व्यवहार किया जाता है। सम्यग्दर्शनादि और जीवादि के बारे में क्या-क्या जाने - यह बताने के लिए आगामी सूत्र की रचना हुई है; जो इसप्रकार है -

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः॥७॥

सम्यग्दर्शनादि और जीवादि तत्त्वार्थों का निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान से अधिगम/ज्ञान करना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय और जीवादि पदार्थों को भलीभाँति जानने के लिए तत्संबंधी निर्देशादि को जानना चाहिए।

निर्देश - वस्तु के स्वरूप का कथन करना निर्देश है।

स्वामित्व - आधिपत्य को स्वामित्व कहते हैं।

साधन - जिससे वस्तु की उत्पत्ति होती है, उस कारण को साधन कहते हैं।

अधिकरण - वस्तु के आधार को अधिकरण कहते हैं।

स्थिति - जितने काल वस्तु रहे, वह उसकी स्थिति है।

विधान - प्रकार, भेद और विस्तार को विधान कहते हैं।

यदि किसी वस्तु का ज्ञान करना हो या कहना हो तो यह जानना आवश्यक होता है कि उसका नाम क्या है, उसका स्वामी कौन है, वह किस साधन से बनी है, वह कहाँ रखी रहती है, उसकी काल मर्यादा कितनी और उसके भेद-प्रभेद कितने हैं - यह सब कुछ जानना होता है।

यदि हमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तथा जीव, अजीव, आसव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष - इन तत्त्वार्थों को जानना है तो इनके बारे में इनके निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और प्रकारों को जानना चाहिए॥७॥

सत्संख्यादि का कथन

सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय और जीवादि तत्त्वार्थों के निर्देशादि के अतिरिक्त सत्, संख्यादि भी जानना चाहिए। तत्संबंधी सूत्र इसप्रकार है-

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च॥८॥

सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय और जीवादि तत्त्वार्थों के सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व को भी जानना चाहिए।

१. वस्तु के अस्तित्व को सत् कहते हैं।
२. वस्तु के भेदों की गिनती को संख्या कहते हैं।
३. वस्तु के वर्तमान निवास-स्थान को क्षेत्र कहते हैं।
४. वस्तु के त्रिकाल संबंधी निवास-स्थान को स्पर्शन कहते हैं।
५. वस्तु के ठहरने की मर्यादा को काल कहते हैं।
६. वस्तु के विरहकाल को अन्तर कहते हैं।
७. औपशमिक, क्षायिकादि परिणामों को भाव कहते हैं।
८. अन्य वस्तु की अपेक्षा किसी वस्तु की हीनाधिकता के वर्णन को अल्पबहुत्व कहते हैं।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि सातवें सूत्र में समागत निर्देशादि में ही सत् संख्यादि भी आ जाते हैं। निर्देश में सत् की, विधान में संख्या की, अधिकरण में क्षेत्र और स्पर्शन तथा स्थिति के प्रकरण में काल की चर्चा की जा सकती है। अतः दो पृथक् सूत्रों की आवश्यकता नहीं है।

उक्त प्रश्न का एकमात्र यही उत्तर है कि शिष्य तीन प्रकार के होते हैं - संक्षिप्तरुचिवाले, मध्यमरुचिवाले और विस्ताररुचिवाले।

संक्षिप्तरुचिवालों के लिए तो प्रमाणनयैरधिगमः ही पर्याप्त है। मध्यमरुचिवालों को प्रमाण और नयों के साथ-साथ निर्देशादि का कथन आवश्यक है; पर विस्ताररुचिवालों को सत्संख्यादि की भी आवश्यकता है।

इसलिए यहाँ तीनों प्रकार के शिष्यों का ध्यान रखकर तीन सूत्र लिखे गये हैं।

प्रमाण और नयों के माध्यम से तथा चार निक्षेपों के व्यवहार से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तथा जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्षरूप तत्त्वार्थों के निर्देश, स्वामित्व आदि तथा सत्, संख्या आदि को जानना चाहिए। इससे पाठकों का तत्त्वज्ञान निर्मल होगा; तथा तत्त्वार्थों के श्रद्धान, ज्ञानपूर्वक राग-द्वेष का त्याग होकर रत्नत्रयरूप मुक्तिमार्ग प्रशस्त होगा।

निर्देशादि और सत्संख्या आदि ऐसे विषय हैं कि जिनको आधार बनाकर बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे गये हैं। सत्संख्या सूत्र के आधार पर षट्स्वण्डागम जैसे महान ग्रंथ

लिखे गये हैं। उनके अधिकारों के नाम भी सत्प्ररूपणा, संख्याप्ररूपणा आदि हैं।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रंथों में तो निर्देश, स्वामित्व आदि एवं सत्, संख्या आदि के जानने को उपायान्तर कहा है और आपके प्रतिपादन से ऐसा लगता है कि ये सब जानने के उपाय नहीं हैं, अपितु ज्ञेयों के वे बिन्दु हैं, जिन्हें जानना है।

उत्तर - अरे, भाई ! दोनों में एक ही बात है। पहले तुम बात को गहराई से समझो।

जब हम किसी व्यक्ति का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं, उसके बारे में गहराई से जानना चाहते हैं तो कुछ बिन्दु निश्चित कर लेते हैं। फिर उनके अनुसार पूछते हैं कि आपका नाम क्या है, आप कहाँ काम करते हैं, आपका अधिकारी कौन है, आपको क्या-क्या करना पड़ता है, आपकी शैक्षणिक योग्यता क्या है आदि।

इसीप्रकार यहाँ यह कहा जा रहा है कि जीवादि पदार्थों और सम्यग्दर्शनादि तीन रत्नों का परिचय प्राप्त करने के लिए उनका नाम (निर्देश), वे किसके हैं (स्वामी), उनकी प्राप्ति कैसे होती है (साधन), वे कहाँ-कहाँ रहते हैं (अधिकरण), वे कहाँ कबतक रहेंगे (स्थिति) और उनके कितने प्रकार हैं (विधान) - इतनी बातों को जानना चाहिए।

और भी अधिक परिचय प्राप्त करने के लिए उनके अस्तित्व (सत्), उनकी गिनती (संख्या) आदि भी जानना चाहिए। इससे रत्नत्रय और सप्त तत्त्वार्थों का गहरा परिचय हमें प्राप्त होगा।

इसीप्रकार उनका यह नाम सार्थक है या कहने मात्र का है (नाम निक्षेप), वे किसी के स्थापित प्रतिनिधि तो नहीं (स्थापनानिक्षेप), वे सदा ही ऐसे रहते हैं या बदलते रहते हैं (द्रव्य व भावनिक्षेप) आदि की जानकारी भी होना चाहिए।

यह सब जानकारी प्रमाण और नयों के माध्यम से ही होगी। अतः प्रमाण-नय ही जानने के असली उपाय हैं। शेष बातें सम्यग्ज्ञान क्या-क्या जानता है, कैसे जानता है, क्यों जानता है आदि ज्ञेयों के विशेषणों की बातें हैं।

इसी बात को समझाने के लिए वहाँ इन्हें उपायान्तर कहा है। अतः सर्वार्थसिद्धि आदि के कथन और हमारे कथन में कोई अन्तर नहीं है।

सब कुछ मिलाकर स्पष्ट स्थिति यह है कि आत्मकल्याण के इच्छुक आत्मारथी भाई-बहिन जानेंगे; प्रमाण और नय से ही जानेंगे; नाम, स्थापना आदि निक्षेपों से प्रतिपादित जीवादि तत्त्वार्थों और सम्यग्दर्शनादिरूप मुक्तिमार्ग को जानेंगे; जीवादि व

सम्यग्दर्शनादि के नाम, स्वामी, साधनादि एवं अस्तित्व, संख्यादि जानेंगे।

इसप्रकार जानने का साधन तो प्रमाण-नयरूप सम्यग्ज्ञान ही रहा, शेष सब तो जानने के प्रकार हैं, ज्ञेयों के विशेषण हैं। उपायान्तर कहने का यही आशय है; इसप्रकार कहने में हमें भी कोई ऐतराज नहीं है। हमने नया कुछ नहीं कहा है; अपितु उसी बात का स्पष्टीकरण किया है।

वह सम्यग्ज्ञान मतिज्ञानादि पाँच प्रकार का होता है, जिनकी चर्चा आगामी सूत्रों में क्रमशः आ रही है। यह चर्चा अधिकार के अन्त तक चलेगी। अध्याय के अन्तिम सूत्र में नयों की भी चर्चा होगी। उसके पूर्व लगभग सम्पूर्ण विवेचन प्रमाण के संदर्भ में ही होगा ॥८॥

प्रमाण के भेद-प्रभेद

छठवें सूत्र में प्रमाण और नयों की बात आई है। वहाँ यह भी स्पष्ट किया था कि सम्यग्ज्ञान ही प्रमाण है। वह सम्यग्ज्ञान पाँच प्रकार का होता है। उन प्रकारों की चर्चा आगामी सूत्रों में कर रहे हैं।

वे सूत्र इसप्रकार हैं -

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥९॥

तत्प्रमाणे ॥१०॥

आद्ये परोक्षम् ॥११॥

प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान - ये पाँच भेद सम्यग्ज्ञान के हैं।

उक्त पाँचों प्रकार का सम्यग्ज्ञान प्रमाण है।

सम्यग्ज्ञान के ये पाँच प्रकार परोक्ष और प्रत्यक्ष के रूप में विभाजित होते हैं।

उनमें से आरंभ के मतिज्ञान और श्रुतज्ञान - ये दो सम्यग्ज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं।

अन्त के तीन सम्यग्ज्ञान - अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान - प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

पराधीन ज्ञान को परोक्ष कहते हैं और स्वाधीन ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं। जो ज्ञान इन्द्रिय, मन, प्रकाश आदि के सहयोग से उत्पन्न होता है, वह पराधीन होने से परोक्ष प्रमाण कहा जाता है; परन्तु जिस ज्ञान में इन्द्रिय, मन, प्रकाश आदि के सहयोग की आवश्यकता नहीं है; वह ज्ञान प्रत्यक्षप्रमाण है।

प्रत्यक्ष प्रमाण भी देशप्रत्यक्ष और सकलप्रत्यक्ष के भेद से दो प्रकार का है। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान देशप्रत्यक्ष हैं और केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है।

सीमित विषयवाले होने से अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान देशप्रत्यक्ष हैं और सम्पूर्ण ज्ञेयों का ज्ञायक होने से केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष है।

उक्त ज्ञान के पाँच प्रकारों का संक्षिप्त स्वरूप इसप्रकार है -

मतिज्ञान - पराश्रय की बुद्धि छोड़कर दर्शनोपयोगपूर्वक स्वसन्मुखता से प्रकट होनेवाले निज आत्मा के ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं। अथवा इन्द्रियाँ और मन हैं निमित्त जिसमें, उस ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं।

श्रुतज्ञान - मतिज्ञान के द्वारा जाने हुए पदार्थ के संबंध से अन्य पदार्थ को जाननेवाले ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं।

अवधिज्ञान - इन्द्रियों और मन के निमित्त बिना तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव की मर्यादा लिए हुए सीधे आत्मा से रूपी पदार्थों को स्पष्टरूप से जानने को अवधिज्ञान कहते हैं।

मनःपर्ययज्ञान - ज्ञानी मुनिराज को इन्द्रियों और मन के निमित्त बिना द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव की मर्यादा लिए हुए दूसरे के मन में स्थित विकल्परूप रूपी विषयों को सीधे आत्मा से स्पष्टरूप से जानने को मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

आगे अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान के विषय के निरूपण के समय 26वें एवं 27वें सूत्र में अवधिज्ञान के विषय को रूपी बताया जायेगा और साथ में उसके अनन्तर्वे भाग सूक्ष्म रूपी विषय को ही मनःपर्ययज्ञान का विषय बताया जायेगा। वह अनन्तर्वाँ भाग सूक्ष्म रूपी विषय दूसरे के मन में स्थित विकल्प ही हैं।

केवलज्ञान - जो तीन लोक तथा तीन कालवर्ती सर्व पदार्थों व उनके समस्त गुण व समस्त पर्यायों को तथा अपेक्षित धर्मों को प्रत्येक समय में स्पष्ट और एक साथ जानता है, ऐसे पूर्ण तथा क्षायिकज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं।

प्रश्न - मतिज्ञान में भी इन्द्रिय और मन निमित्त होते हैं और मनःपर्यय ज्ञान में भी मन की बात आ रही है। दोनों में मूलभूत अन्तर क्या है ?

उत्तर - मतिज्ञान परोक्ष प्रमाण है; क्योंकि उसमें अपनी इन्द्रियाँ और मन निमित्त के रूप में सहयोगी होते दिखाई देते हैं; पर मनःपर्ययज्ञान तो प्रत्यक्ष प्रमाण है। उसे जानने के कार्य में इन्द्रियादिरूप परपदार्थों के सहयोग की रंच भी आवश्यकता नहीं है। उसके संदर्भ में तो अपने नहीं, अन्य जीव के मन में स्थित विकल्प, ज्ञान का ज्ञेय

बनते हैं। मात्र बात इतनी ही है।

इसप्रकार उक्त चार सूत्रों में मात्र इतना ही कहा गया है कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान – ये पाँच ज्ञान सम्यग्ज्ञानरूप हैं। ये पाँचों ज्ञान सम्यग्ज्ञानरूप होने से प्रमाण हैं।

प्रत्यक्ष और परोक्ष के रूप में प्रमाण दो प्रकार का होता है। आदि के दो ज्ञान अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं तथा अन्त के तीन ज्ञान अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

यद्यपि यहाँ तत्त्वार्थसूत्र में मतिज्ञान व श्रुतज्ञान को परोक्षप्रमाण ही कहा गया है; तथापि न्यायशास्त्र में एक सांख्यवहारिक प्रत्यक्ष होता है, जिसे इन्द्रिय प्रत्यक्ष भी कहते हैं। इसीप्रकार अध्यात्मशास्त्र के अनुसार एक स्वानुभूति प्रत्यक्ष भी होता है; ये सांख्यवहारिक प्रत्यक्ष और स्वानुभूति प्रत्यक्ष मति-श्रुत ज्ञानवालों को ही होते हैं।

आत्मा को भी अक्ष कहते हैं और इन्द्रियों को भी अक्ष कहा जाता है। जो ज्ञान; इन्द्रिय, आलोक आदि के सहयोग (निमित्त) के बिना सीधा अक्ष से, आत्मा से जानता है; उसे निश्चय से प्रत्यक्ष कहते हैं और जो ज्ञान इन्द्रियों (अक्ष) के सहयोग (निमित्त) से जानता है, उसे भी व्यवहार से प्रत्यक्ष कहते हैं, सांख्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं, इन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं।

इसीप्रकार जब मति-श्रुत परोक्ष ज्ञान; इन्द्रिय और आलोकादि निमित्त के बिना निर्विकल्प होकर अपने आत्मा को जानते हैं, उसे निजरूप जानते-मानते हैं; तब उसे स्वानुभव प्रत्यक्ष कहते हैं।

इसप्रकार प्रत्यक्षप्रमाण और परोक्षप्रमाण की सामान्य चर्चा हुई। आगे यथास्थान इन विषयों पर विस्तार से बात करेंगे ॥9-12॥

मतिज्ञान

नौवें सूत्र से बारहवें सूत्र तक पाँच प्रकार के ज्ञानों की सामान्य चर्चा करके, उनके परोक्ष-प्रत्यक्षादि भेद-प्रभेद गिनाये हैं और अब आगामी १३ से १९वें सूत्र तक सात सूत्रों में मतिज्ञान के संबंध में विशेष जानकारी उपलब्ध कराते हैं।

उक्त सात सूत्रों में पहला अर्थात् १३ वाँ सूत्र इसप्रकार है –

मतिःस्मृतिःसंज्ञाचिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥

मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध – ये मतिज्ञान के ही नामान्तर हैं, पर्यायवाची नाम हैं।

यद्यपि इनका स्वरूप अलग-अलग है; तथापि इन सभी में मतिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम ही अंतरंग निमित्त है। इसकारण इन्हें मतिज्ञान के नामान्तर कहा है।

मनन करना मति है, स्मरण करना स्मृति है, जोड़रूप ज्ञान संज्ञा अर्थात् प्रत्यभिज्ञान है, व्याप्ति ज्ञान तर्क अर्थात् चिन्ता है और अनुमान ज्ञान अभिनिबोध है।

न्याय शास्त्र के सूत्र ग्रंथ परीक्षामुख के तीसरे अध्याय में उक्त मति, स्मृति आदि की चर्चा विस्तार से की गई है।

मतिज्ञान के अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा – इन चारों प्रकारों की चर्चा आगे 15वें सूत्र में आवेगी।

जब मतिज्ञान इन्द्रिय प्रत्यक्ष से, मति नामक नामान्तर में; अवग्रह, ईहा और अवाय के रास्ते से धारणा तक पहुँचता है, तब कालान्तर में उसका याद आना स्मरण है, स्मृति है। इसप्रकार तत्त्व का निर्णय करने के लिए मनन करना मति है और धारणा ज्ञान में विद्यमान ज्ञेय का याद आना – स्मरण करना स्मृति है।

जब वही मतिज्ञान पूर्वकाल के इन्द्रिय प्रत्यक्ष और वर्तमान इन्द्रिय प्रत्यक्ष को स्मृति के माध्यम से जोड़ता है; तब उससे जो ज्ञान होता है; वह **संकलनरूप (जोड़रूप) ज्ञान प्रत्यभिज्ञान, संज्ञा है।**

यह वही है, जो मैंने पहले देखा था अथवा यह उस जैसा है अथवा उससे एकदम उल्टा है, विपरीत है – इसप्रकार के जोड़रूप ज्ञान को **प्रत्यभिज्ञान अथवा संज्ञा कहते हैं।**

यह प्रत्यभिज्ञान पाँच प्रकार का होता है –

1. 'यह ही वह है' – यह एकत्व प्रत्यभिज्ञान है।
2. 'यह उसके समान है' – यह सादृश्य प्रत्यभिज्ञान है।
3. 'यह उससे विलक्षण है, विपरीत लक्षणवाला है' – यह विलक्षण प्रत्यभिज्ञान है।
4. 'यह इससे दूर है' – यह प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान है और
5. 'यह वृक्ष है' – यह सामान्य प्रत्यभिज्ञान है।

जब प्रत्यक्ष, स्मृति, संज्ञा के आधार पर हम इसप्रकार के नियम तैयार कर लेते हैं कि जहाँ-जहाँ धूम होता है, वहाँ-वहाँ अग्नि अवश्य होती है और जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं होती, वहाँ-वहाँ धूम भी नहीं होता – इन नियमों को व्याप्तिज्ञान कहते हैं और

व्याप्तिज्ञान ही तर्क है। इसे ही चिन्ता भी कहते हैं।

इस व्याप्तिज्ञानरूप तर्क से अनुमान की सिद्धि होती है। उक्त अनुमान को ही अभिनिबोध भी कहते हैं।

साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं।^१

इस पर्वत पर अग्नि विद्यमान है; क्योंकि उसके ऊपर धुंआ है। जहाँ-जहाँ धुंआ होता है, वहाँ-वहाँ अग्नि अवश्य होती है। जैसे रसोईघर। जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं होती है, वहाँ-वहाँ धुंआ भी नहीं होता। जैसे तालाब।

चूंकि इस पर्वत पर धूम है; अतः यहाँ अग्नि अवश्य है। यह अनुमान का सर्वांग उदाहरण है।

अनुमान ज्ञान दो प्रकार का होता है - 1. स्वार्थानुमान और 2. परार्थानुमान।

स्वयं ही जाने हुए साधन से साध्य के ज्ञान को स्वार्थानुमान कहते हैं और दूसरे के उपदेश पूर्वक जो साधन से साध्य का ज्ञान होता है, उसे परार्थानुमान कहते हैं।

ध्यान रहे स्वार्थानुमान मतिज्ञान में आता है और परार्थानुमान श्रुतज्ञान में।^२ स्वयं समझने के लिए जो अनुमान किया जाता है, वह स्वार्थानुमान है और दूसरे को समझाने के लिए अनुमान का प्रयोग किया जाता है, वह परार्थानुमान है।

इसप्रकार मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध - ये सभी क्रमशः विकसित मतिज्ञान की ही अवस्थायें हैं ॥13॥

इन्द्रिय और मन की निमित्तता

इन मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोधरूप मतिज्ञान में इन्द्रिय और मन निमित्त होते हैं। इसकी चर्चा आगामी सूत्र में है, जो इसप्रकार है -

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥१४॥

उस मतिज्ञान में इन्द्रिय और मन निमित्त होते हैं।

ध्यान रहे, मतिज्ञान के पाँच भेदों में जो पहला भेद मति है; उसमें ही इन्द्रियाँ और मन निमित्त होते हैं; स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध में मात्र मन ही निमित्त होता है, इन्द्रियाँ नहीं।^३

१. आचार्य माणिक्यनंदि परीक्षामुख : साधनात् साध्यविज्ञानम् अनुमानम् ॥१०॥

२. श्री भास्करनंदि : तत्त्वार्थवृत्ति, सूत्र १३

३. वही, सूत्र १४

प्रश्न - क्या मतिज्ञान में इन्द्रिय और मन का निमित्त होना आवश्यक है ?

उत्तर - आवश्यक तो नहीं, परन्तु जब मतिज्ञान के माध्यम से आत्मा, रूपी पुद्गल को जानता है, उनके जाननेरूप विकल्पों में परिणत होता है; तब उसमें इन्द्रियाँ और मन निमित्त अवश्य होते हैं।

यह तो आप जानते ही हैं कि इन्द्रियाँ मात्र स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्दों की ही ग्राहक हैं और मन विकल्पों में निमित्त होता है।

अतः जब आत्मा अमूर्तिक पदार्थों को जानता है, विशेषकर आत्मसम्मुख होता है; तब उसमें इन्द्रियों और मन की निमित्तता की आवश्यकता नहीं होती।

यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि इन्द्रियाँ और मन तो रूपी पुद्गल पदार्थों को ही जानने में निमित्त हो सकते हैं तथा मतिज्ञान का विषय छहों द्रव्य और उनकी कुछ पर्यायें हैं।

अतः मतिज्ञान इन्द्रिय और मन के निमित्त के बिना भी संभव है; अन्यथा उससे इन्द्रियातीत, विकल्पातीत आत्मानुभूति कैसे होगी ? ॥१४॥

अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणा

अब यह स्पष्ट करते हैं कि मतिज्ञान का क्रमिक विकास किसप्रकार होता है, इस बात को स्पष्ट करनेवाला आगामी सूत्र इसप्रकार है -

अवग्रहेहावायधारणाः ॥१५॥

मतिज्ञान का विकास चक्षु-अचक्षुदर्शन पूर्वक अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के रूप में होता है।

1. चक्षु-अचक्षुदर्शन पूर्वक होनेवाले सामान्य ज्ञान को अवग्रह कहते हैं। 'यह मनुष्य है' - इसप्रकार के ज्ञान को अवग्रह ज्ञान कहा जाता है।

2. चक्षु-अचक्षुदर्शन पूर्वक अवग्रह में जाने हुए पदार्थ के संबंध में विशेष जानने के प्रयास का नाम ईहा ज्ञान है। यह मनुष्य तो है पर आर्य है या म्लेच्छ? - इसप्रकार की जिज्ञासा उत्पन्न होकर जो ज्ञान प्रवृत्त होता है; वह ज्ञान ईहा ज्ञान है।

3-4. ईहा में हुए प्रयास से किसी निश्चय पर पहुँच जाना अवाय ज्ञान है और फिर उसे कालान्तर में नहीं भूलना धारणा ज्ञान है।

इसप्रकार इन्द्रिय और अनीन्द्रिय अर्थात् मन के निमित्त से प्रगट रूपी पदार्थ के

अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा - ये सभी मतिज्ञान की क्रमशः विकसित होनेवाली पर्यायें हैं।

इस मतिज्ञान में उक्त मति के उपरान्त स्मृति, संज्ञा (प्रत्यभिज्ञान) चिन्ता (तर्क-व्याप्तिज्ञान) और अभिनिबोध (अनुमान ज्ञान) होते हैं। ये सभी मतिज्ञान के ही नामान्तर हैं।

ध्यान रखने की बात यह है कि मति-स्मृति आदि पाँचों के समुदाय का नाम भी मतिज्ञान ही है और मतिज्ञान के प्रथम नामान्तर का नाम भी मति या मतिज्ञान है। अतः इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि मति या मतिज्ञान पद का प्रयोग कहाँ/किस अर्थ में हुआ है ॥१५॥

अवग्रहादि के विषयभूत पदार्थ

मतिज्ञान, अवग्रहादि के द्वारा जिन्हें जानता है, वे पदार्थ बारह प्रकार के होते हैं। तत्संबंधी सूत्र इसप्रकार हैं -

बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥१६॥

अर्थस्य ॥१७॥

बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त और ध्रुव - इन छह प्रकार के पदार्थों का और इनके उल्टे (प्रतिपक्षभूत) एक, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त और अध्रुव - इन छह को मिलाकर कुल बारह प्रकार के पदार्थ मतिज्ञान में अवग्रहादिरूप में जाने जाते हैं।

ये बहु आदि भेद पदार्थ के हैं। इन्हें उक्त विधिपूर्वक जाननेवाला ज्ञान मतिज्ञान है।

इन बारह भेदों का स्वरूप संक्षेप में इसप्रकार है -

१. बहु - बहुत। उसे संख्या और परिमाण की दृष्टि से देखा जा सकता है। बहुत मनुष्य - यह संख्या की दृष्टि से और बहुत दाल - यह परिमाण की दृष्टि से हुआ।

२. एक या अल्प - थोड़ा। यह भी संख्या और परिमाण की दृष्टि से दो प्रकार का हो सकता है। संख्या की दृष्टि से थोड़े मनुष्य या एक मनुष्य और परिमाण की दृष्टि से थोड़ी दाल या एक पदार्थ।

३. बहुविध - संख्या और परिमाण की दृष्टि से बहुत प्रकार के पदार्थ। जैसे गेहूँ, दाल आदि अनेकप्रकार के अनाज।

४. एकविध - संख्या और परिमाण की दृष्टि से एक प्रकार के पदार्थ। जैसे एक ही प्रकार के चावल।

बहु और एक में जाति विवक्षित नहीं होती; जबकि बहुविध और एकविध में जाति विवक्षित रहती है। इन दो युग्मों में यही अन्तर है।

क्षिप्र - पदार्थों का शीघ्रतापूर्वक ज्ञान या अतिवेग से गतिशील पदार्थ का ज्ञान। तीव्र गति से गमन करनेवाले मनुष्य का ज्ञान।

अक्षिप्र - पदार्थों का ज्ञान धीरे-धीरे होना या धीमी गति से गमन करनेवाले पदार्थ का ज्ञान।

अनिःसृत - नहीं निकला हुआ। जो पदार्थ पूरा छिपा रहता है, वह अनिःसृत कहलाता है और जिसका कुछ हिस्सा छिपा रहता है, उसे भी अनिःसृत ही कहते हैं।

नदी में हाथी पूरा डूबा हो; उसके माथे के ऊपर पानी की सतह पर भिनभिनाते मच्छरों को देखकर हाथी का ज्ञान अनिःसृत मतिज्ञान है तथा नदी में से हाथी की सूंड सामने आते ही केवल सूंड का ज्ञान न होकर सूंड सहित पूरे हाथी का ज्ञान होना भी अनिःसृत मतिज्ञान है।

निःसृत - निकला हुआ। नदी में से पूर्णतः बाहर निकले हुए हाथी का ज्ञान होना, निःसृत मतिज्ञान है।

अनुक्त - अभिप्राय में रहनेवाला पदार्थ अथवा जिसके बारे में कुछ नहीं कहा गया हो; वह पदार्थ अनुक्त है। जिस समय चक्षु से नमक या चीनी का ज्ञान होता है, उसी समय उसके रस का ज्ञान होना अनुक्त ज्ञान है।

उक्त - कहा गया पदार्थ। कहे हुए पदार्थ का ज्ञान होना उक्त मतिज्ञान है। जैसे - यह फल मीठा है।

ध्रुव - चिरकाल तक अवस्थित रहनेवाले पदार्थ ध्रुव हैं अथवा कुछ काल किसी पदार्थ को एक रूप से ग्रहण करते रहना ध्रुव मतिज्ञान है।

अध्रुव - ध्रुव का विपरीत अध्रुव है।

ये बारह प्रकार के भेद उन पदार्थों के हैं; जिन्हें मतिज्ञान जानता है ॥16-17॥

(क्रमशः)

अंतर में दृष्टि लगाना ही आत्मा का आहार है। श्रद्धा-ज्ञान का बारम्बार अभ्यास करना ही आत्मा का आहार है। 821.

- द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, पृष्ठ 188